विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् । स्थितिसंयमकर्ताऽसौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥३१॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

श्रीपराशर उवाच

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥१॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥२॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः । अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥३॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः । मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥४॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् । प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥५॥
ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थतः । तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥६॥

में स्थित है । वे ही इस जगत् की स्थिति (पालन) करने वाले तथा इसका संयम (लय) करने वाले हैं । वे ही जगत् स्वरूप हैं । अर्थात् यह जगत् विष्णवात्मक ही है ॥३१॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

महर्षि पराशर कृत भगवत् स्तुति के पश्चात् सृष्टि से पूर्व की स्थिति का वर्णन; प्राकृतिक चौबीस तत्त्वों के विचार के पश्चात् जगत् की सृष्टि तथा स्थिति (पालन) के कर्ता भगवान् विष्णु की महत्ता का वर्णन

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— विकार रहित, शुद्धस्वरूप नित्य, परमात्मा, सदा एक समान बने रहने वाले, सर्व व्यापक सबको अपने वश में रखने वाले, ब्रह्मारूप से जगत् की सृष्टि करने वाले, श्रीहरि रूप से जगत् का पालन करने वाले, शङ्कर रूप से जगत् का संहार करने वाले तथा अपने भक्तों को मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥१-२॥ जो एक होकर भी अनेक रूपों वाले हैं, (कार्यावस्था में) स्थूल रूप से रहने वाले तथा (कारणावस्था में) सूक्ष्म रूप से रहने वाले (प्रलयकाल में) जिनका स्वरूप अव्यक्त रहता है तथा (सृष्टिकाल में) जिनका स्वरूप व्यक्त रहता है, (अपने शरणागत जीवों को) मुक्ति प्रदान करने वाले, भगवान् विष्णु को नमस्कार है॥३॥ जो जगन्मय, जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा विनाश करने वाले हैं, जो जगत् के (अभिन्न निमित्तोपादान) कारण स्वरूप हैं, उन परमात्मा भगवान् विष्णु को नमस्कार है ॥४॥ जो सम्पूर्ण जगत् के आधररूप होकर भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप हैं, सभी भूतों में (अन्तर्यामी रुप से) स्थित रहने वाले, अच्युत (अपनी प्रतिज्ञा से कभी च्युत नहीं होने वाले) ऐसे (स्वेतर समस्त चेतनाचेतनों से उत्तम होने के कारण लोक तथा वेद में) पुरुषोत्तम शब्द से अभिहित किए जाने वाले (भगवान् विष्णु को) प्रणाम करके ॥५॥ जो वस्तुतः ज्ञान स्वरूप हैं, तथा (अखिल हेय प्रत्यनीक होने के कारण

विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम् । प्रणम्य जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥७॥
कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः । पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥८॥
तैश्चोक्तं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदातटे । सारस्वताय तेनापि मह्यं सारस्वतेन च ॥९॥
परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः । रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः ॥१०॥
अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्धिजन्मभिः । वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् ॥११॥
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः । ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥१२॥
तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् । एकस्वरूपं तु सदा हेयाभावाच्च निर्मलम् ॥१३॥
तदेव सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् । तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥१४॥
परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज । व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम् ॥१५॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालानां परमं हि यत् । पश्यन्ति सूरयः शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१६॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः । रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतवः ॥१७॥
व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च । क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय ॥१८॥
अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः । प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम् ॥१९॥

क्लेश, कर्म आदि दोषों से रहित) अत्यन्त निर्मल हैं, तथा अज्ञानी जीवों को दृश्य रूप से प्रतीत होने वाले ॥६॥ सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रहने वाले, प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् को अपने में लीन कर लेने वाले, स्थिति तथा सृष्टि काल में सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, जगत् के नियामक, अजन्मा तथा अक्षय होने के कारण अव्यय (निर्विकार) भगवान् विष्णु को नमस्कार करके मैं उस प्रसङ्ग को तुम्हें सुनाता हूँ जिसे दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनियों द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने उन्हें सुनाया था ॥७-८॥ उस प्रसङ्ग को दक्ष आदि मुनियों ने नर्मदा के तट पर राजा पुरुकुत्स को सुनाया था, पुरुकुत्स ने सारस्वत को सुनाया और सारस्वत ने उसे मुझे (पराशर महर्षि को) सुनाया ॥९॥ जो परमात्मा सभी श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ हैं; सबों के भीतर आत्मा रूप से स्थित हैं, रूपविशेष, तथा वर्णविशेष (ब्रह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) आदि के निर्देश तथा नाम विशेष से रहित हैं, जो अपक्षय (ह्रास) विनाश, परिणाम, वृद्धि तथा जन्म रूपी विकारों से रहित है, जिन्हें केवल सदा सत् शब्द से अभिहित किया जा सकता है ॥१०-११॥ चूकि वे सर्वत्र आत्मा रूप से निवास करते हैं, तथा प्रलयकाल में सारा संसार सूक्ष्म रूप से उनमें निवास करता है; इसीलिए, आत्मज्ञ पुरुष उन्हें वासुदेव शब्द से अभिहित करते हैं ॥१२॥ वे ही परब्रह्म हैं, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय (निर्विकार) हैं । उनका स्वरूप सदा एक समान रहता है । उनमें कोई भी दोष नहीं है, अतएव वे निर्मल हैं ॥१३॥ वे ही सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं, वे व्यक्तस्वरूप तथा अव्यक्तस्वरूप हैं । वे ही पुरुष रूप से तथा काल रूप से स्थित हैं॥१४॥ हे द्विज ! उनका प्रथम रूप पुरुष का है । उनके दूसरे रूप, अव्यक्त (प्रकृति) व्यक्त (महदादि) हैं तथा उनका तीसरा रूप काल है ॥१५॥ जो प्रधान (प्रकृति) पुरुष (जीव) व्यक्त (महदादि) तथा काल इन तीनों से श्रेष्ठ है, भगवान् विष्णु के परम पद रूप से ज्ञानी (आत्मज्ञ) पुरुष उनका साक्षात्कार करते हैं ॥१६॥ प्रधान (प्रकृति) पुरुष, व्यक्त (महदादि) तथा काल भगवान् विष्णु के पृथक्-पृथक् रूप (रूप्यते अनेन इस व्युत्पत्ति के अनुसार शरीर) हैं तथा जो जगत् की स्थिति, सृष्टि, संहार, अभिव्यक्ति तथा सद्भाव के कारण हैं ॥१७॥ भगवान् विष्णु जो व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष तथा काल रूप से स्थित रहते हैं उसे क्रीडा करने वाले बालक की क्रीडा के समान समझना चाहिए॥१८॥ भगवान् का जो अव्यक्त कारण रूप है, उसे श्रेष्ठ ऋषिगण, प्रधान शब्द से अभिहित करते है । वही

अक्षय्यं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवम्। शब्दस्पर्शविहीनं तद्रूपादिभिरसंहितम् ॥२०॥
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम्। तेनाग्रे सर्वमेवासीद्व्याप्तं वै प्रलयादनु॥२१॥
वेदवादविदो विद्वन्नियता ब्रह्मवादिनः। पठन्ति चैतमेवार्थं प्रधानप्रतिपादकम्॥२२॥
नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥२३॥
विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम् ॥२४॥
प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत्। तस्मतात्प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः ॥२५॥
अनादिर्भगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते। अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः॥२६॥
गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पृथक्पुंसि व्यवस्थिते। कालस्वरूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय परिवर्त्तते॥२७॥
ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः। सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः ॥२८॥
प्रधानपुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः। क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ॥२९॥
यथा सन्निधिमोत्रेण गन्धः क्षोभाय जायते। मनसो नोपकर्तृत्वात्तथाऽसौ परमेश्वरः॥३०॥

प्रकृति है। वह अत्यन्त सूक्ष्म है, तथा सदसदात्मक स्वरूप है ॥१९॥ वह अक्षय है, भगवान् के उस रूप का कोई आधार नहीं है, वह अमेय (जिसके परिमाण को नहीं जाना जा सके) है; अजर (जरात्व दोष से रहित) ध्रुव, शब्द, स्पर्श, आदि से रहित तथा रूप आदि से रहित है ॥२०॥ वह सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों से युक्त, संसार के कारण स्वरूप, अनादि, उत्पत्ति तथा विनाश से रहित, प्रलयकाल से लेकर सृष्टिकाल से पहले तक यह सम्पूर्ण जगत् उसी से व्याप्त था ॥२१॥ हे विद्वन् ! उसी को लक्ष्य बनाकर, वेदों के मर्म को जानने वाले ब्रह्मज्ञानी पुरुष उस प्रधान के प्रतिपादक रूप से निम्नांकित दो श्लोकों को पढा करते हैं ॥२२॥ उस समय प्रलयकाल में न दिन था, न रात्रि थी, न अकाश था, न पृथिवी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न तो कुछ था श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों तथा बुद्धि आदि का अविषयभूत केवल प्रधान ब्रह्म तथा पुरुष था ॥२३॥ हे विप्र मैत्रेय ! भगवान् विष्णु के परम रूप से वे दोनों प्रधान तथा पुरुष रूप (उद्भूत) हुए। उन्हीं भगवान् विष्णु के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों (सृष्टिकाल में) संयुक्त तथा (प्रलयकाल में) वियुक्त होते हैं। हे द्विज ! उस रूपान्तर का ही नाम काल है॥२४॥ बीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त प्रपञ्च चूकि प्रकृति में ही लीन था अतएव प्रपञ्च के इस प्रलय को प्राकृतिक प्रलय कहते हैं ॥२५॥ हे द्विज! काल रूपी भगवान् अनन्त हैं, इनका कोई भी अन्त नहीं है, इसीलिए संसार की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय कभी भी समाप्त नहीं होते हैं, सदा होते ही रहते हैं ॥२६॥ हे मैत्रेय ! प्रलय काल में जब प्रकृति साम्यावस्थ में हो जाती है (अर्थात् प्रकृति के सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीनों गुण बराबर मात्रा में हो जाते हैं) तथा पुरुष प्रकृति से पृथक् हो जाता है, उस समय भगवान् विष्णु का काल रूप शरीर उन दोनों को धारण करने में प्रवृत्त होता है ॥२७॥ उसके पश्चात् जब सृष्टिकाल उपस्थित हुआ उस समय, वे जगत् स्वरूप, सर्वव्यापक, सभी भूतों (जीवों) के स्वामी, सबों की अन्तरात्मा परमेश्वर (सम्पूर्ण जगत् के स्वामी तथा नियामक) परमात्मा परंब्रह्म अपने (सत्यसङ्कल्प रूप) इच्छा से ही उन दोनों (विकारी प्रकृति तथा अविकारी पुरुष) के भीतर (अन्तर्यामी रूप से) प्रवेश करके उन्हें क्षोभित किये ॥२८-२९॥ जिस तरह गन्ध अपने सन्निधान मात्र से मन को क्षुब्ध कर देता है, उसी तरह परमात्मा भी अपने सन्निधान मात्र से ही प्रकृति तथा पुरुष में क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं ॥३०॥ हे ब्रह्मन् ! वे पुरुषोत्तम

स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तमः । स सङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥३१॥
विकासाणुस्वरूपैश्च ब्रह्मरूपादिभिस्तथा । व्यक्तस्वरूपश्च तथा विष्णुः सर्वेश्वरेश्वर ॥३२॥
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने । गुणव्यञ्जनसम्भूतिः सर्गकाले द्विजोत्तम ॥३३॥
प्रधानतत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत्। सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥३४॥
प्रधानतत्त्वेन समं त्वचा बीजमिवावृतम्। वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥३५॥
त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत। भूतेन्द्रियाणां हेतुस्स त्रिगुणत्वान्महामुने ।
यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः ॥३६॥
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः । ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ॥३७॥
शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः स समावृणोत् । आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥३८॥
बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः । आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥३९॥
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह। ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥४०॥
स्पर्शमात्रं तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत्। ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ॥४१॥
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च। रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ॥४२॥
विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे । संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः ॥४३॥

ही क्षोभ उत्पन्न करने वाले हैं, तथा क्षुभित होने वाले भी वे ही हैं । वे ही सङ्कोचावस्था (साम्यावस्था) तथा विकासावस्था (कार्यावस्था) रूप से प्रधान रूप से भी स्थित हैं ॥३१॥ ब्रह्मा आदि समस्त ईश्वरों के भी स्वामी भगवान् विष्णु ही हैं, सूक्ष्म (समष्टि) तथा स्थूल (व्यष्टि) रूप से, ब्रह्मादि जीव रूप से, तथा महत् तत्त्व रूप से वे ही स्थित हैं ॥३२॥ हे द्विजोत्तम मैत्रेय ! सृष्टि काल के उपस्थित होने पर क्षेत्रज्ञ रूप से भगवान् विष्णु के द्वारा अधिष्ठित गुणों की साम्यावस्था रूप प्रकृति से, गुणों की साम्यावस्था रूप प्रकृति से, जिससे गुणों की अभिव्यक्ति होती है, उस महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुई ॥३३॥ उस प्रधान तत्त्व से उद्भूत होने वाले महत् तत्त्व को सात्त्विक, राजस एवं तामस इन तीन प्रकारों से महत् तत्त्व ने आवृत कर लिया ॥३४॥ जिस तरह बीज छिलके से समान रूप से ढँका रहता है, उसी तरह महत् तत्त्व भी प्रधान तत्त्व से आवृत था । उस महत् तत्त्व से तीन प्रकार का अहङ्कार उत्पन्न हुआ १. वैकारिक (सात्त्विक), २. तैजस (राजस) एवं ३. भूतादि (तामस) ॥३५॥ यह तीनों प्रकार का अहङ्कार भी महत् तत्त्व से उद्भूत हुआ । हे महामुने ! वह त्रिगुणात्मक होने के कारण पृथिव्यादि भूतों तथा इन्द्रियों का कारण है । जिस तरह प्रधान आवृत था उसी तरह वह तीनों प्रकार का अहङ्कार भी महत् तत्त्व से आवृत हुआ॥३६॥ भूतादि (तामस) अहङ्कार भी विकृत होकर शब्द तन्मात्रा तथा शब्द गुण वाले आकाश नामक महाभूत को उत्पन्न किया॥३७॥ उस शब्द तन्मात्रा तथा आकाश को उस भूतादि (तामस अहङ्कार) ने आवृत किया । (शब्दतन्मात्रा सूक्ष्म) आकाश भी विकृत होकर स्पर्श तन्मात्रा को उत्पन्न किया ॥३८॥ उस स्पर्श तन्मात्रा से स्पर्श नामक गुण वाला वायु उत्पन्न हुआ। स्पर्श तन्मात्रा को आकाश तथा शब्द तन्मात्रा ने आवृत कर लिया ॥३९॥ उसके बाद विकृत होकर वायु ने रूप तन्मात्रा को उत्पन्न किया । उस रूप तन्मात्रा से युक्त वायु से रूप नामक गुण वाला तेज उत्पन्न हुआ॥४०॥ स्पर्शतन्मात्रा रूप (सूक्ष्म) वायु ने रूप तन्मात्रा को आवृत कर लिया । विकृत होकर तेज ने भी रस तन्मात्रा की सृष्टि की ॥४१॥ उस रस तन्मात्रा से ही गुण वाले जलों की उत्पत्ति होती है । उस रस तन्मात्रा को भी रूप तन्मात्रा रूप सूक्ष्म तेज ने आवृत कर लिया ॥४२॥ जलों ने भी विकृत होकर गन्ध तन्मात्रा की सृष्टि की, उससे गन्ध गुण वाली

तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता ॥४४॥
तन्मात्राण्यविशेषाणि अविशेषास्ततो हि ते ॥४५॥
न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषिणः । भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् ॥४६॥
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश । एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥४७॥
त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पञ्चमम् । शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वै द्विज ॥४८॥
पायूपस्थौ करौ पादौ वाक् च मैत्रेय पञ्चमी । विसंगशिल्पगत्युक्ति कर्म तेषां च कथ्यते ॥४९॥
आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा । शब्दादिभिर्गुणैर्ब्रह्मन्संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥५०॥
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ॥५१॥
नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना । नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥५२॥
समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसामाश्रयाः । एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥५३॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च । महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥५४॥
तत्क्रमेण विवृद्धं सज्जलबुद्बुदवत्समम् । भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे महत्तदुदकेशयम् ।
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥५५॥
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपो जगत्पतिः । विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः ॥५६॥

पृथिवी उत्पन्न हुयी ॥४३॥ विभिन्न आकाशादि भूतों में तन्मात्राएँ हैं, इसीलिए वे तन्मात्र शब्द से अभिहित की जाती हैं । तन्मात्राएँ अविवेश (गुणों से रहित) हैं इसीलिए वे अविशेष कही जाती हैं ॥४४-४५॥ वे अविशेष तन्मात्राएँ शान्त, घोर अथवा मूढ़ रूप नहीं हैं, अर्थात् उनका सुख, दुःख अथवा मोह रूप से अनुभव नहीं होता है । इस तरह इस भूत तन्मात्राओं की सृष्टि तामस अहङ्कार से हुयी ॥४६॥ कुछ लोगों ने इन्द्रियों को तैजस अहङ्कार जन्य बतलाया है । किन्तु मन के साथ दश इन्द्रियाँ वैकारिक (सात्त्विकाहङ्कार) जन्य हैं । (उनको देव शब्द से इसलिए कहा गया है कि उनके अधिष्ठाता विभिन्न इन्द्र इत्यादि देवता हैं । उनको तैजस इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि राजस अहङ्कार तो सात्त्विक तथा तामस इन दोनों अहङ्कारों का प्रवर्तक है ।) उन दश इन्द्रियों के बाद ग्यारहवाँ मन है । वह भी इन्द्रिय है ॥४७॥ हे द्विज ! त्वक्, चक्षु, नासिका (घ्राणेन्द्रिय), जिह्वा (रसनेन्द्रिय) तथा पाचवाँ मन ये पाञ्चों ज्ञानेन्द्रियाँ है; ये बुद्धि से संयुक्त होकर शब्द आदि (स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध) को ग्रहण करने का काम करती हैं ॥४८॥ पायु (मलेन्द्रिय) उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) दोनों हाथ (पाणीन्द्रिय) दोनों पैर पादेन्द्रिय तथा पाँचवी वाणी ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और विसर्ग (मलत्याग तथा मूत्र त्याग) शिल्प, गमन और बोलना इनके कर्म हैं ॥४९॥ आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पाँचो भूत उत्तरोत्तर शब्द, स्पर्श आदि (रूप, रस एवं गन्ध) पाँच गुणों से युक्त होते हैं ॥५०॥ ये पाँचो भूत (शान्त, घोर और मूढ हैं) अर्थात् सुख, दुःख एवं मोह युक्त हैं । अतएव ये विशेष कहलाते हैं ॥५१॥ उनमें पृथक्-पृथक् अनेक प्रकार की शक्तियाँ थीं, किन्तु जब तक वे आपस में पूर्ण रूप से (पञ्चीकरण प्रक्रिया के द्वारा) नहीं मिले तब तक प्रजाओं की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हुए ॥५२॥ परस्पर में एक दूसरे के आश्रय पर रहने वाले तथा एक ही संघात की उत्पत्ति के लक्ष्य वाले, महत् तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त प्रकृति के ये सभी विकार पुरुष (परमात्मा) से अधिष्ठित होकर प्रधान (प्रकृति) के अनुग्रह से ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किए ॥५३-५४॥ हे महाबुद्धे ! (मैत्रेय) जल के बुलबुले के समान, भूतों से क्रमशः बढ़ा हुआ तथा जल पर स्थित वह महान् अण्ड (हिरण्यगर्भ) ब्रह्मा रूप विष्णु का सर्वोत्तम प्राकृत स्थान हुआ ॥५५॥ उसमें अव्यक्त स्वरूप जगत् के स्वामी भगवान्

मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः । गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्सुमहात्मनः ॥५७॥
साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः । तस्मिन्नण्डेऽभवद्विप्र सदेवासुरमानुषः ॥५८॥
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः । वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ॥५९॥
अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंस्तैः सर्वैः सहितो महान् । एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।
नारिकेलफलस्यान्तर्बीजं बाह्यदलैरिव ॥६०॥
जुषन् रजो गुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः । ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्त्तते ॥६१॥
सृष्टं पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना । सत्त्वभृद्भगवान्विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥६२॥
तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः । मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः ॥६३॥
भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते । नागपर्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः ॥६४॥
प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरूपधृक् ॥६५॥
सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥६६॥
स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च । उपसंह्रियते चान्ते संहर्ता च स्वयं प्रभुः ॥६७॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च । सर्वेन्द्रियान्तः करणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत् ॥६८॥
स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोऽव्ययः । सर्गादिकं तु तस्यैव भूतस्थमुपकारकम् ॥६९॥

विष्णु व्यक्त स्वरूप वाले ब्रह्मा के रूप में स्वयम् स्थित हो गये ॥५६॥ उन महात्मा हिरण्यगर्भ का उल्ब (गर्भ को ढँकने वाली झिल्ली) सुमेरु पर्वत हुआ, दूसरे पर्वत जरयु (गर्भाशय) हो गये और सभी समुद्र उसके गर्भोदक बन गये ॥५७॥ हे विप्र मैत्रेय ! उस ब्रह्माण्ड में ही पर्वतों के साथ सभी द्वीप तथा सभी समुद्र, ग्रहों के साथ सम्पूर्ण लोक एवं देवता, असुर और मनुष्य अनेक प्रकार के प्राणियों का समूह प्रकट हुआ ॥५८॥ वह ब्रह्माण्ड पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दस-दस गुना अधिक विस्तृत क्रमशः जल, अग्नि, वायु, आकाश, भूतादि (तामसाहङ्कार) से आवृत है और भूतादि महत् तत्त्व से आवृत है ॥५९॥ हे ब्रह्मन् ! इन सबों के साथ वह महत् तत्त्व अव्यक्त (प्रकृति तत्त्व) से आवृत है । जिस तरह नारिकेल (नारियल) के भीतर रहने वाला बीज अनेक बाहरी छिलकों से ढँका रहता है, उसी तरह वह ब्राह्मण्ड भी इन सात प्राकृत आवरणों से आवृत है ॥६०॥ उसके भीतर ब्रह्मा रूप से विद्यमान भगवान् विष्णु रजोगुण को अपना कर जगत् की सृष्टि करने के कार्य में प्रवृत्त होते हैं ॥६१॥ उस सृष्टि के पूर्ण हो जाने के पश्चात्, जिनके पराक्रम की कोई सीमा नहीं है, ऐसे भगवान् विष्णु सत्त्वगुण को अपनाकर उस सृष्ट जगत् की कल्पपर्यन्त प्रत्येक युग में रक्षा करने का काम करते हैं ॥६२॥ हे मैत्रेय ! जब कल्प का अन्त होता है, उस समय तमोगुण के उद्रिक्त हो जाने के कारण वे तमोगुणी अत्यन्त भयङ्कर रुद्र शरीर को धारण करके सम्पूर्ण भूतों का भक्षण कर जाते हैं । इस तरह समस्त भूतों का भक्षण करके संसार को एकमात्र समुद्र रूप से जलमय करके वे परमेश्वर शेष शय्या पर शयन करते हैं ॥६४॥ जब वे जगते हैं, तो फिर ब्रह्मा शरीरक होकर वे ही भगवान् विष्णु जगत् की पुनः सृष्टि करते हैं ॥६५॥ वे जनार्दन भगवान् विष्णु जगत् की सृष्टि करने वाली ब्रह्मा की संज्ञा को, पालन करने वाली विष्णु की संज्ञा को तथा जगत् का संहार करने वाली रुद्र की संज्ञा को धारण करते हैं ॥६६॥ जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु स्रष्टा बनकर अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालन करने वाले विष्णु होकर पाल्य जगत् रूपी अपनी ही रक्षा करते हैं और रुद्र रूप से संहारक होकर अपना ही संहार करते हैं ॥६७॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण इत्यादि जितना जगत् है, वह सम्पूर्ण पुरुष स्वरूप है; क्योंकि निर्विकार

स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च ।
ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्तिर्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥७०॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेऽशे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

श्रीमैत्रेय उवाच

निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याप्यमलात्मनः । कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणोऽभ्युपगम्यते ॥१॥
शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः । यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः ।
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता ॥२॥
तन्निबोध यथा सर्गे भगवान्सम्प्रवर्त्तते । नारायणाख्यो भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३॥
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन्नित्यमेवोपचारतः ॥४॥
निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् । तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते ॥५॥
कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ । तेन तस्य निबोधत्वं परिमाणोपपादनम् ॥६॥

रहने वाले भगवान् विष्णु ही सबों की अन्तरात्मा हैं तथा वे विश्वरूप हैं । अर्थात् सम्पूर्ण जगत् उनका शरीर है । प्राणियों के द्वारा होने वाली सृष्टि भी उनकी ही उपकारिका है ॥६८-६९॥ वे ही सृज्य सृष्टि किए जाने वाले तथा वे ही सृष्टि करने वाले भी हैं । वे ही सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करते हैं, तथा रक्षा भी उनकी ही होती है । सबों से श्रेष्ठ, वर देने वाले और वरेण्य भगवान् विष्णु ही, सम्पूर्ण जगत् शरीरक हैं, तथा ब्रह्मा आदि की अवस्थाओं को धारण करके सृष्ट्यादि कर्म को करते हैं ॥७०॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

ब्रह्मा आदि की आयु और काल के स्वरूप का वर्णन

मैत्रेय महर्षि ने पूछा— जो परंब्रह्म निर्गुण (प्राकृतिक गुणों से रहित) अप्रेमय, (प्राकृतिक दोषों से रहित होने के कारण) शुद्ध तथा निर्मल स्वरूप हैं, वे ही परंब्रह्म जगत् की सृष्टि आदि का कार्य क्यों करते हैं ?॥१॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे तपस्वियों में श्रेष्ठ मैत्रेय ! चूकि सभी भाव पदार्थों की शक्तियाँ अचिन्त्य ज्ञान का विषय हैं, (उनके विषय में कोई भी तर्क काम नहीं करता है) जिस तरह अग्नि की उष्णता की शक्ति स्वाभाविक है, उसी तरह परंब्रह्म की जगत् की सृष्टि आदि करने की शक्ति भी स्वाभाविक है ॥२॥ जिस तरह नारायण शब्द से कहे जाने वाले भगवान् लोक पितामह ब्रह्मा रूप से सृष्टि के कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उसे आप हमसे सुनें ॥३॥ हे विद्वन्! ब्रह्माजी नित्य हैं, किन्तु उन्हें औपचारिक रूप से (ब्रह्मा उत्पन्न हुए) यह कहा जाता है ॥४॥ उनके परिमाण से ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की है । उनकी उस आयु को परशब्द से कहा जाता है, उसके आधे भाग को परार्द्ध कहा जाता है ॥५॥ हे अनघ ! (निष्पाप) मैंने जो तुम्हें भगवान् विष्णु के कालस्वरूप को बतलाया है उसी